५

स्वामी करपात्रीजी

[स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती]

अनन्त श्रीविभूषित स्वामी करपात्रीजी महाराज आधुनिक युग में काशीस्थ संन्यासियों के शिरोमणि रूप से विराजमान रहे हैं। उनकी वाणी और लेखनी दोनों में धर्म के रहस्यों के उद्घाटन करने की अलौकिक क्षमता थी। वे हृदयावर्जिका विमला वाणी के जैसे प्रेरक मनीषी थे, वैसे ही ललितललाम लेखनी के धनी थे। वाणी और लेखनी का यह मञ्जुल सामरस्य किस विद्वान् को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ नहीं होता ? वे वैदिक शास्त्र के मर्म के उन्मीलन में समर्थ वाग्मी थे जिनके विषय में कहा गया है—"वाग्मी भवति वा न वा"। वे वैसे नीरस वेदान्ती नहीं थे जो वेदान्त के शुष्क तर्कों के चिन्तन में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग करता है, प्रत्युत वे सौन्दर्य-सार-सर्वस्व रसामृतमूर्ति निकुञ्जविहारी की परम पावन निकुञ्जलीला के भक्ति-रसाप्लुत सहृदय उपासक थे जिनकी कमनीय वाणी से भक्तिरस के मधुमय कण बिखरे पड़ते थे। उनकी लेखनी ने जो कुछ भी निबद्ध किया वह केवल मस्तिष्क की वस्तु नहीं है, प्रत्युत उनके रस-सान्द्र हृदय का आनन्दमय उल्लास है। ऐसे गम्भीर चिन्तक, नैष्ठिक उपासक तथा सहृदय लेखक के सात्त्विक जीवन की धारा से परिचित होकर अपने को सुधारने तथा सँवारने की अभिलाषा किस व्यक्ति में न होगी ? उसी जीवन की एक भव्य झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

जन्म और शिक्षा

स्वामी करपात्रीजी का जन्म उत्तरप्रदेश में प्रतापगढ़ जिले के भटनी नामक गाँव में श्रावण शुक्ला द्वितीया को सं० १९६४ वि० (सन् १९०७) में हुआ। इनके पूर्वज गोरखपुर जिले के ओझौली गाँव के निवासी थे। परन्तु कालान्तर में कालाकाँकर के राजा स्वामीजी के पितामह को भटनी (प्रतापगढ़) ले गये जहाँ जाकर वे बस गये। स्वामीजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पण्डित रामनिधि ओझा था जो बड़े ही सात्त्विक तथा धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे।

पण्डित रामनिधि ओझा के तीन पुत्र हुए जिनमें कनिष्ठ पुत्र का नाम हरनारायण था। यही हरनारायण कालान्तर में स्वामी करपात्री के नाम से प्रसिद्ध हुए। ओझाजी का परिवार पुरातन सभ्यता तथा संस्कृति का बड़ा प्रेमी था। अतः गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ओझाजी ने अपने इस पुत्र को संस्कृत पढ़ाने का निश्चय किया। अतः उन्होंने घर पर ही प्रथमा परीक्षा के पाठ्यग्रन्थों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया। तीक्ष्ण बुद्धि होने के कारण हरनारायण ने शीघ्र ही संस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया। परन्तु इन्होंने किसी विद्यालय में विधिवत् अध्ययन नहीं किया।

विवाह तथा वैराग्य

बालक हरनारायण का स्वभाव जन्म से ही विरागी था। इसे सांसारिक कार्यों में कोई आनन्द नहीं आता था। केवल नौ वर्ष के वय में ही इसे जीवन से उचाट तथा उदासीनता हो गयी और यह बार-बार घर छोड़कर किसी अज्ञात वस्तु की खोज में भागने लगा। एक-दो बार इनके पिता और भाई इन्हें खोजकर घर ले आये परन्तु फिर भी इनका मन घर में नहीं लगता था। पिता ने यह समझकर कि सम्भवतः विवाह कर देने पर इसका मन संसार में लगने लगेगा, उन्होंने विवाह पास के ही खण्डवा नामक गाँव में कर दिया, परन्तु हरनारायण के विरागी मन में विवाह करने के पश्चात् भी राग उत्पन्न नहीं हो सका। घर छोड़कर भागने का इनका क्रम जारी रहा। अन्त में पिता ने देखा कि इनका मन जब घर में लगता ही नहीं तब इन्हें रोकना व्यर्थ है। अतः इनसे निवेदन किया कि सन्तानोत्पत्ति के बाद तुम घर छोड़कर जा सकते हो। सत्रह वर्ष के वय में सन् १९२४ ई० में इन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार पिता के आदेश का पालन कर इन्होंने अन्तिम रूप से घर छोड़ने का निश्चय कर लिया। फलतः हरनारायण ने अपने बूढ़े पिता और बूढ़ी माता, युवती स्त्री और अबोध पुत्री को रोते और कलपते हुए छोड़कर संसार से सदा के लिए अपना नाता तोड़ लिया। यही हरनारायण के महाभिनिष्क्रमण' की संक्षिप्त कथा है।

गुरु की खोज में

केवल सत्रह वर्ष के वय में युवक हरनारायण घर छोड़कर वैरागी बन गये। ये घर से निकल तो पड़े परन्तु इन्हें कहाँ जाना है और क्या करना है, इसका इन्हें स्वयं पता नहीं था। अपने गाँव से पैदल ये अनेक नदी-नालों को पार करते हुए, बीहड़ मार्गों का अतिक्रमण करते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे। अनेक दिनों की पैदल यात्रा करने के पश्चात् ये प्रयाग के समीप कुटेश्वर गाँव में पहुँचे। वहाँ एकाएक देखा कि एक महात्मा वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए तपस्या कर रहे हैं। वे महात्मा टाट का कोपीन धारण किये हुए ध्यानमग्न थे। ध्यान भंग होने पर उन्होंने अपने सामने एक नवयुवक को खड़ा पाया। उससे प्रश्न करके उसका आशय जान लेने के पश्चात् उन्होंने हरनारायण से कहा कि "तुम नरवर जाकर अभी अध्ययन करो। तुम पर माँ सरस्वती की विशेष कृपा रहेगी।" इस महात्मा की आज्ञा मानकर हरनारायण नरवर के लिए चल पड़े। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे महात्मा स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज थे जो आगे चलकर ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य हुए। उनका प्रधान आश्रम प्रयाग के 'अलोपी बाग' में था जो आज भी वहीं विद्यमान है।

नरवर में अध्ययन

प्राचीन काल से ही नरवर शिक्षा का केन्द्र रहा है। वहां सांगवेद विद्यालय स्थापित है। इसी विद्यालय में उन दिनों नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीजीवनदत्तजी महाराज

अध्यापन कार्य करते थे। उन्हीं के चरणों में बैठकर हरनारायण ने देववाणी संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। यहीं पर उन दिनों स्वामी विश्वेश्वराश्रम महाराज भी विद्यमान थे जो षड्दर्शनाचार्य होने के अतिरिक्त प्रकाण्ड विद्वान् थे। हरनारायण ने इन्हीं विद्वान् से व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन अनेक वर्षों तक किया। कुछ दिनों के पश्चात् स्वामी अच्युतमुनि के अनुरोध पर जब स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी नरवर को त्याग कर वहाँ से लगभग ७-८ मील की दूरी पर स्थित 'भृगुक्षेत्र' चले गये, तब हरनारायण को भी उनका अनुगमन करना पड़ा। वहाँ भी इन्होंने अपने अध्ययन का क्रम चालू रखा और कुछ ही वर्षों में अपने स्वाध्याय तथा गुरु को कृपा से प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

घोर तपस्या

अध्ययन के पश्चात् हरनारायण ने तपस्या करने का निश्चय किया। अब इन्होंने हरिहर चेतन (चैतन्य) नाम धारण कर लिया था। तपस्या के आकर्षण के कारण ये उत्तराखण्ड में स्थित हिमालय की हिम से आच्छादित तलहटियों में बैठकर तपस्या करने लगे। भूख और प्यास की यातना सहते हुए ये अपने शरीर की ममता को त्याग कर साधना में निरत हो गये। इस प्रकार ये तीन वर्षों तक घनघोर तपस्या करते रहे। इसी बीच इन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई और तपस्या सफलीभूत हो गयी। जब ये अपनी साधना समाप्त कर परमहंस के रूप में आश्रम में लौटे तब इनके मुखमण्डल पर अलौकिक आभा दिखाई पड़ने लगी थी। इनके साथियों ने इनका स्वागत किया और बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। हरिहर चेतन ने सर्वप्रथम अपने गुरु के चरणों की वन्दना की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

अब हरिहर चेतन केवल एक कोपीन धारण करते थे। केवल पवित्र तथा सदाचारी ब्राह्मणों के घर में ही भिक्षा करने के लिए जाते थे। ये अपने कर (हाथ) को ही पात्र बनाकर उसी में भोजन किया करते थे। अपने वास्तविक नाम की अपेक्षा इसीलिए ये 'करपात्रीजी' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुए।

एक बार करपात्रीजी नरवर आश्रम से प्रयाग आये। वहाँ इन्होंने अपने गुरु स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती का दर्शन किया। स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी के अनुरोध से करपात्रीजी ने गुरु ब्रह्मानन्दजी से सन् १६३१ ई० में संन्यास की दीक्षा ली और तभी से ये दण्ड धारण करने लगे। संन्यासाश्रम में दीक्षित होने के पश्चात् स्वामीजी ने धर्म और संस्कृति का प्रचार करना प्रारम्भ किया। इन्होंने भागवत की कथा सुनाकर जनता में धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की। इनकी अनेक कथाओं में इन पंक्तियों के लेखक को भी उपस्थित होने का अवसर मिला है। इनकी प्रवचन की पद्धति समुचित तथा विद्वत्तापूर्ण होते हुए संस्कृत की कठिन तथा अप्रयुक्त शब्दावली से इतनी अधिक बोझिल थी कि साधारण श्रोता इसे समझने में नितान्त असमर्थ होता था।

धर्मसंघ की स्थापना

भारत में धर्म का प्रचार करने तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए करपात्री जी ने सन् १९४० ई० में काशी में धर्मसङ्घ की स्थापना की। इस सङ्घ का प्रधान कार्यालय दुर्गाकुण्ड रोड पर दुर्गाजी के मन्दिर के पास ही स्थित है। धर्मसङ्घ के दो विभाग हैं--(१) शैक्षणिक विभाग तथा (२) राजनैतिक विभाग। शैक्षणिक विभाग के अन्तर्गत धर्मसङ्घ के विस्तृत परिसर में ही एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की गयी जिसमें पाँच-छह अध्यापक बड़े मनोयोग से संस्कृत का अध्यापन करते हैं। इस पाठशाला में व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, वेद आदि अनेक शास्त्रों का अध्यापन आचार्य कक्षा तक होता है। करपात्री जी ने इस पाठशाला के लिए सरकारी अनुदान (ग्राण्ट) स्वीकार नहीं किया और इसे धार्मिक जनता के दान से ही सञ्चालित करते थे। यह पाठशाला धर्मसङ्घ शिक्षा-मण्डल के अन्तर्गत सञ्चालित होती है। आजकल इस मण्डल के द्वारा बीसियों संस्कृत पाठशालाएँ सञ्चालित हो रही हैं। करपात्री जी के इस पवित्र कार्य में स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी, पं० विजयानन्द त्रिपाठी तथा म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने प्रचुर योगदान किया था। इन विद्वानों की सहायता से करपात्री जी के द्वारा संस्थापित शिक्षा-मण्डल का कार्य सुचारु रूप से सञ्चालित हो रहा है। इन पाठशालाओं की स्थापना से संस्कृत विद्या का प्रचार देश में हो रहा है।

राजनैतिक विभाग

धर्मसङ्घ का दूसरा अङ्ग राजनैतिक विभाग का कार्य है। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार इस देश में राज्य सञ्चालन हो, इस उद्देश्य से स्वामी करपात्री जी ने 'रामराज्य परिषद्' नामक संस्था की स्थापना सन् १९५२ ई० में की थी। इस संस्था का एकमात्र लक्ष्य इस देश में रामराज्य की स्थापना है। 'रामराज्य' से करपात्री का अभिप्राय है देश में पक्षपातरहित, न्यायपरायण, धार्मिक शासन की स्थापना, जिसमें इस देश के सभी व्यक्तियों को वर्णाश्रम के आधार पर समान अधिकार प्राप्त हो और सभी लोग शास्त्रों में वर्णित अपने कर्मों को करने में सदा संलग्न रहें।

इसी अभिप्राय से करपात्री जी ने धर्मसङ्घ की स्थापना की। रामराज्य-परिषद् की ओर से सन् १९५२ ई० के प्रथम लोकसभा चुनाव के अवसर पर उम्मीदवार खड़े किये गये थे जिसमें अनेक राजे-महाराजे भी थे। इन उम्मीदवारों में अनेक लोकसभा के सदस्य चुन लिये गये थे। बाद के चुनावों में रामराज्य परिषद् को विशेष सफलता नहीं मिल सकी। इस प्रकार जिस उद्देश्य से रामराज्य-परिषद् की स्थापना की गयी थी वह पूरा नहीं हो सका।

हिन्दू कोड बिल का विरोध

जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमन्त्री थे तब उन्होंने लोकसभा में हिन्दू कोड बिल उपस्थित किया जिसके अनुसार हिन्दुओं के विवाह और दाय-भाग के अधिकार में महान् परिवर्तन की व्यवस्था थी। करपात्री जी ने इस कोड बिल को अशास्त्रीय बताकर

इसका प्रबल विरोध किया। स्थान-स्थान पर सभा का आयोजन कर इसके विरोध में जनमत तैयार किया। इस कार्य में झूँसी के सन्त श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने इनकी बड़ी सहायता की थी। धार्मिक जनता के प्रबल विरोध के कारण पं० नेहरू को हिन्दू कोड बिल को स्थगित करना पड़ा।

पत्रों का प्रकाशन

स्वामी करपात्री जी ने अपने धार्मिक तथा राजनैतिक विचारों के प्रचार के लिए 'सन्मार्ग' नामक दैनिक समाचारपत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र के द्वारा स्वामी जी के विचारों का प्रचार देश में किया जाता है। यह पत्र आजकल काशी और कलकत्ता दोनों स्थानों से प्रकाशित होता है। इन्होंने कुछ दिनों तक 'सिद्धान्त' नामक साप्ताहिक पत्र का भी प्रकाशन किया था जो अनेक वर्षों तक चलता रहा।

गोहत्या-प्रतिरोध

भारत में गोवंश की क्या महत्ता है इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। गो को माता कहा गया है। अतः भारतवर्ष में गोहत्या न हो और गोहत्या पर कानून के द्वारा प्रतिरोध लगा दिया जाय, इसके लिए करपात्री जी ने बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा किया। इस कार्य में श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी तथा पुरी के शङ्कराचार्य स्वामी निरंजनदेव तीर्थ ने बड़ा सहयोग किया। इन दोनों सज्जनों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाने पर आमरण अनशन तक प्रारम्भ कर दिया। स्वामी करपात्री जी ने अपने भाषणों तथा लेखों द्वारा इस आन्दोलन को और भी अधिक बलवान् बनाया। इसके लिए दिल्ली में प्रदर्शन करने के कारण इन्हें जेल की यातना भी भुगतनी पड़ी। अन्त में सरकार झुक गयी और उसने गोहत्या बन्द कर देने का पूर्ण आश्वासन दिया।

यज्ञों की धूम-शिखा

स्वामी करपात्री जी का यह विश्वास था कि देश के कल्याण और मंगल के लिए यज्ञों का विधान अत्यन्त आवश्यक है। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर इन्होंने स्थान-स्थान पर अनेक यज्ञों का विधान किया था। सं० १९९९ वि० (१९४२ ई०) में दिल्ली में शतमुखकोटि होम नामक यज्ञ का आयोजन इन्होंने बड़ी धूम-धाम से किया था, जिसको देखने के लिए सहस्रों नर-नारी नित्यप्रति उपस्थित होते थे। इसके एक वर्ष पश्चात् सं० २००० (१९४३ ई०) में कानपुर में गंगा के उस पार एक महान् यज्ञ का आयोजन किया गया। अनेक लोगों के प्रबल विरोध करने पर भी यह यज्ञ सकुशल समाप्त हो गया।

कानपुर के पश्चात् काशी में नगवा के समीप गंगा के तट पर पुनः एक महान् यज्ञ सम्पादित किया गया। इस यज्ञ के अवसर पर १०८ बार श्रीमद्भागवत का सप्ताह पाठ भी आयोजित किया गया था। इस यज्ञ में सम्मिलित होने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुआ। यज्ञ के अन्त में 'वसुधारा' का दृश्य दर्शनीय था जब सैकड़ों वैदिक विद्वान् अग्नि में आज्य की धारा छोड़ रहे थे। काशी के बाद

स्वामी जी ने लखनऊ में लक्षचण्डी महायज्ञ का श्रीगणेश किया जो सकुशल समाप्त हुआ। उदयपुर के महाराणा के आग्रह पर स्वामी जी ने वहाँ चातुर्मास्य करना स्वीकार किया और वहाँ लक्षचण्डी यज्ञ का विशाल आयोजन कर उसे राजकीय वैभव के साथ सम्पन्न किया। इस प्रकार इन्होंने यज्ञमय वातावरण उपस्थित कर दिया था।

दैनिक चर्या

स्वामी करपात्री जी का चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा पवित्र था। केवल सत्रह वर्ष के वय में ही इन्होंने अपने घर का परित्याग कर सांसारिक मोह-माया से नाता तोड़ भगवान् से नाता जोड़ लिया था। स्वामी जी की दिनचर्या सन्तुलित तथा नियमित थी। ये प्रतिदिन रात्रि में प्रायः २ बजे उठते थे तथा नित्यकर्म करके पूजा के आसन पर बैठ जाते थे। यह पूजन घण्टों प्रातःकाल तक चलता था। ये पूजन के त्रिकाल नियमों का पालन करते थे। दिन में घण्टों वेद-भाष्य की रचना के लिए लेखन का कार्य करते थे। सन्ध्या के समय प्रायः भागवत की कथा कहते थे अथवा आगत भक्तों को उपदेश देते थे। सन्ध्या को पाँच बजे केवल एक बार भोजन ग्रहण करते थे। रात्रि में पुनः पूजा-पाठ का क्रम चलता था। इस चर्या के पालन करने में ये बड़े कठोर थे।

करपात्री जी प्रायः पैदल ही चला करते थे। एक स्थान से सुदूर दूसरे स्थान तक जाने के लिए या तो यह नौका से यात्रा करते थे अथवा पैदल ही चलते थे। परन्तु धर्मसङ्घ की स्थापना होने पर अधिक भ्रमण की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इधर ये मोटर कार का भी प्रयोग करने लगे थे। सम्भवतः वायुयान का प्रयोग भी यात्रा के लिए उत्तम समझते थे परन्तु रेलगाड़ी का प्रयोग सम्भवतः स्पर्शास्पर्श के कारण उचित नहीं मानते थे।

ग्रन्थरचना

स्वामी करपात्री जी के लिखने की शक्ति भाषणों की अपेक्षा कम नहीं थी। ये लेखनी के धनी और संस्कृत एवं हिन्दी उभय भाषाओं में ग्रन्थों का प्रणयन कर इन्होंने पण्डितों का तथा जिज्ञासु जनता का महान् उपकार किया। संस्कृत ग्रन्थ पण्डितों को लक्ष्य कर लिखे गये हैं और हिन्दी ग्रन्थ उस भाषा से अनभिज्ञ सामान्य जनता के लिए। संस्कृत ग्रन्थों के विषय वेद, तन्त्र तथा भक्ति शास्त्र हैं। संस्कृत रचनाओं में प्रमुख ग्रन्थ हैं—

(क) वेदविषयक ग्रन्थ : वेदार्थ-पारिजातः (बृहत् विशाल दो खण्डों में विभक्त), वेदस्वरूपविमर्शः, वेदप्रामाण्यमीमांसा।

(ख) तन्त्रविषयक ग्रन्थ : श्रीविद्यारत्नाकरः।

(ग) भक्तिविषयक ग्रन्थ : भक्तिरसार्णवः।

(१) वेदार्थ पारिजात

स्वामी करपात्रीजी नवीन शैली से वेदों की व्याख्या करने में संलग्न थे। स्वामी जी ने 'आध्यात्मिक शैली' को महत्व प्रदान कर इसी का पूर्णतः उपयोग अपने वेद के

भाष्य में किया है। शुक्ल यजुर्वेद संहिता के चालीसों अध्याय का इन्होंने विस्तृत भाष्य लिखा जो अभी यन्त्रस्थ है। वेदों के सम्बन्ध में स्वामी जी की **वेदभाष्य भूमिका** दो विस्तृत खण्डों में प्रकाशित हो चुकी है जिसमें हिन्दी पाठकों को ध्यान में रखकर संस्कृत के साथ ही उसका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। वेदार्थ पारिजात[१] नामक यह ग्रन्थ दो हजार पृष्ठों में है जो इनके वेद-भाष्य की भूमिका मात्र है। सनातनी परम्परा के पोषक तथा प्रचारक होने के कारण स्वामी जी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को श्रुति मानते थे। वेद अपौरुषेय हैं। ऋषिगण मन्त्रों के द्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं। इसी प्रकार के अन्य सिद्धान्तों की पुष्टि तर्क तथा युक्ति के सहारे की गयी है और इन सिद्धान्तों का विरोध करने वाले व्यक्तियों के मतों का खण्डन इन्होंने बड़े विस्तार तथा वैशद्य से किया।

(२) **वेदस्वरूप विमर्शः**[२]—स्वामी करपात्री जी ने वेद के विशुद्ध स्वरूप का परिचय देने के लिए तथा परम्परागत वेद-प्रामाण्य की मीमांसा के लिए इस महनीय ग्रन्थ का निर्माण किया। तर्क-वितर्क वाली शास्त्रीय पद्धति में निबद्ध होने वाला यह ग्रन्थ बड़े विस्तार के साथ वैदिक तत्त्वों का उन्मीलन करता है। इस ग्रन्थ में चार अध्याय या विमर्श हैं—(१) वेदस्वरूप विमर्शः, (२) वेदप्रामाण्य विमर्शः, (३) वेद अपौरुषेय विमर्शः और (४) ब्राह्मणानां वेदत्वविमर्शः। प्रथम विमर्श में वेद शब्द की निरुक्ति, वेद की अनन्तता, यज्ञमीमांसा आदि विषयों का विवेचन कर वेद में विज्ञान और इतिहास का अन्वेषण करने वाले विद्वानों के मत का खण्डन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। द्वितीय विमर्श में वेद के नित्यत्व तथा स्वतःप्रमाण होने के सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। बुद्ध की सर्वज्ञता का खण्डन कर अन्त में वेदाध्ययन के अधिकारी का निरूपण किया गया है। तृतीय विमर्श में वेद के अपौरुषेयत्व के सम्बन्ध में गम्भीर विचार किया गया है। इस अध्याय के अन्त में वैयाकरणों के वेदविषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन बड़ी विद्वत्ता के साथ सम्पन्न हुआ है। चतुर्थ विमर्श में यह बड़े ऊहापोह के साथ दिखलाया गया है कि वेदों का ब्राह्मण (ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्) भाग भी श्रुति का अविभाज्य अङ्ग है। यह ग्रन्थ ४५० पृष्ठों में निर्मित है। वेदों के सम्बन्ध में यावत् ज्ञातव्य वस्तुएँ हैं उन सभी का एकत्र सङ्कलन इस ग्रन्थ में मौलिक रूप में पाया जाता है।

(३) **वेद-प्रामाण्य-मीमांसा**[3]—पूर्वग्रन्थ के द्वितीय विमर्श के वर्ण्य विषयों की सामग्री कुछ अधिक विस्तार के साथ वेद-प्रामाण्य-मीमांसा नामक इस छोटी सी पुस्तिका

---

१. यह ग्रन्थ राधाकृष्ण प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता से १९८० ई० में प्रकाशित है।

२. वेदस्वरूपविमर्शः : करपात्री जी, भक्तिसुधा साहित्य परिषद्, कलकत्ता, सं० २०२६ वि० (१९६९ ई०)।

३. धर्मसङ्घ शिक्षा मण्डल, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी से प्रकाशित, सं० २०१७ वि०।

में वर्णित है। विषय की महत्ता तथा विपुल प्रचार की दृष्टि से इसे स्वतन्त्र रूप दिया गया है।

(४) **श्रीविद्यारत्नाकर:**

करपात्री जी महाराज के तन्त्रशास्त्र-विषयक प्रगाढ़ वैदुष्य का परिचायक यह 'श्रीविद्यारत्नाकर:' संस्कृत ग्रन्थ अनेक दिशाओं में अपना प्रामुख्य धारण करता है। इसके अनुशीलन से प्रतीत होता है कि वे तन्त्र की आनुष्ठानिक विधियों के, व्यावहारिक कार्यकलापों के तथा तान्त्रिक पूजा-अर्चा के सूक्ष्मतत्वों के गम्भीर विद्वान् थे। यह ग्रन्थ तन्त्रशास्त्र के प्राचीन महनीय ग्रन्थ जैसे कुलार्णव, तन्त्रराज, कल्पसूत्र, श्रीविद्यार्णव, त्रिपुरारहस्य एवं नित्योत्सव आदि को मुख्य आधार मान कर तत्तत् विषयों का पुंखानुपंख विवरण प्रस्तुत करता है। आरम्भ में दीक्षाक्रम का वर्णन है। तदनन्तर महागणपतिक्रम-पुरश्चरण विधि, गणेशसहस्र नामावलि आदि के विवरण के साथ प्रतिपादित किया गया है। श्रीक्रम के विविध अनुष्ठान विस्तार से व्याख्यात हैं (पृ० ७५–२३४), तदनन्तर श्यामाक्रम (पृ० २३५–६०), दण्डिनीक्रम, वाराहीक्रम (पृ०२६१–७५) तथा परापद्धति का प्रतिपादन है। अन्त में परिशिष्ट (पृ० २८२–४७०) के भीतर श्रीविद्यामन्त्रभाष्य, वांछाकल्पलता के पश्चात् पूर्णाभिषेक का वर्णन बड़े विस्तार एवं वैशद्य के साथ दिया गया है। श्रीविद्या के सर्वस्वभूत षड् आम्नायों से सम्बद्ध मन्त्रों का भी सुन्दर वर्णन है। ग्रन्थ के अन्त में आदि शंकराचार्य द्वारा प्रणीत प्रख्यातस्तोत्र सौन्दर्यलहरी, त्रिपुरसुन्दरी, मानसपूजा स्तोत्र, बालात्रिपुरासुन्दरी-मानसपूजा स्तोत्र भी दिये गये हैं। अनन्तर महायागक्रम में प्रयोगविधि समेत भावनोपनिषद् दिया गया है। वर्ण्य विषयों की इस संक्षिप्त सूची से ही ग्रन्थ के विस्तार, गम्भीर तान्त्रिक विवेचन तथा विशिष्ट विषय-विन्यास का जिज्ञासु पाठकों को संकेत मिल जाता है। ग्रन्थ की उपादेयता तथा अपूर्वता नितान्त स्पृहणीय है (प्र० भक्तिसुधा साहित्य परिषद्, कलकत्ता, २०२९ वि० सं०)।

(५) **भक्तिरसार्णव:**—इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य संस्कृत में 'भक्ति रस' का विस्तृत तथा गम्भीर विवेचन है। इस ग्रन्थ-रत्न में भक्ति रस के स्वरूप का विवेचन शास्त्रीय पद्धति से किया गया है। यह मधुसूदन सरस्वती के भक्तिरसायन की शैली में ही निबद्ध है परन्तु उससे अनेक बातों में अपनी विलक्षणता रखता है। संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति में निबद्ध होने पर भी उदाहरण की प्रचुरता के कारण यह ग्रन्थ सरल और सुबोध है। इस ग्रन्थ में वेद से सम्बद्ध भी अनेक लेखों तथा निबन्धों का संग्रह है। भक्तिरस का विस्तृत तथा विशाल विवेचन ग्रन्थ की महत्ता तथा उपादेयता का स्पष्ट प्रमाण है।

हिन्दी रचनाएँ

हिन्दी में इनकी रचनाएँ बहुत हैं और प्रमेय-बहुल हैं। उनके प्रधान ग्रन्थ इस प्रकार हैं—(१) विचारपीयूष, (२) रामायण मीमांसा, (३) भक्तिसुधा, (४) श्रीभगवत्

तत्व, (५) रामराज्य और मार्क्सवाद, (६) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू धर्म। यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय ही ग्रन्थ की उपादेयता तथा प्रामाणिकता को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त होगा।

(१) विचारपीयूष

यह ग्रन्थ करपात्रीजी द्वारा रचित पुस्तकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ में दो विभाग हैं— (१) भारतीय राजनीति, और (२) आधुनिक वाद। प्रथम विभाग में स्वामीजी ने वेद, शास्त्र, काव्य, इतिहास और पुराणों में वर्णित राजनीति का सम्यक् विवेचन किया है। महाभारत इतिहास का ग्रन्थ होने के अतिरिक्त राजनीति का अगाध भाण्डार है। इसके शान्ति पर्व में राजनीति का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। स्वामीजी ने महाभारत में उपलब्ध भारतीय राजनीति के विभिन्न तत्वों का उद्-घाटन बड़ी ही विद्वत्ता से किया है। इसके साथ ही भारतीय नीतिकारों तथा संस्कृत के कवियों विशेषकर भारवि और माघ—ने कूटनीति का जो विवरण अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है उसका वर्णन स्वामीजी ने सरल रीति से हिन्दी पाठकों के लिए किया है। इस विभाग में इन्होंने छह विषयों का मूल उद्धरणों के साथ विवेचन किया।

दूसरा विभाग 'आधुनिकवाद' है जिसमें विभिन्न प्रकार के ग्यारह विषयों (टापिक) पर विचार प्रकट किये गये हैं। स्वामीजी के द्वारा विचारणीय विषयों की सीमा बड़ी विस्तृत है। इन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता से ले कर वैयक्तिक सम्पत्ति, मार्क्सवाद, जनतंत्र, धर्मसापेक्षता और कौटिलीय अर्थशास्त्र तक को भी अपने विचारों का विषय बनाया। इन्होंने गुरुजी गोलवलकर की पुस्तक 'विचार-नवनीत' में संकलित विचारों का खण्डन किया। स्वामी करपात्रीजी की धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विचार-धारा से भले ही कोई सहमत न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ की रचना से इनकी राजनीतिक विद्वत्ता का पदे-पदे पता चलता है।

(२) रामायण मीमांसा

स्वामी करपात्रीजी द्वारा रचित यह विशालकाय ग्रन्थ रायल साइज के १११४ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थ में करपात्रीजी ने कामिल बुल्के द्वारा लिखित 'रामकथा' के आक्षेपों का उत्तर दिया। इसके साथ ही रामकथा से सम्बन्धित जो उपलब्ध सामग्री है उसका एकत्र संकलन किया गया। इस मोटी सी पुस्तक में कुल मिलाकर २२ (बाईस) अध्याय हैं। स्वामीजी ने रामकथा की परम्परा तथा इस कथा के विभिन्न पात्रों के चरित्र के विकास का वर्णन बड़ी ही विद्वत्ता से किया। रामायण के विभिन्न काण्डों की कथा का प्रामाणिक तथा शास्त्रीय विवरण स्वामीजी के द्वारा प्रस्तुत है। परन्तु सबसे अधिक आश्चर्यजनक विषय है स्वामीजी के द्वारा भारतीय भाषाओं में रामकथा-साहित्य का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन। करपात्रीजी ने हिन्दी, बंगला, उड़िया, असमिया, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् दक्षिण भारतीय भाषाओं—तमिल, तेलुगु,

कन्नड़ तथा मलयालम में उपलब्ध भगवान् राम के चरित-सम्बन्धी काव्यों का सांगोपांग विवेचन किया है। किम्बहुना, उर्दू साहित्य में राम कथा को लेकर जो काव्य लिखे गये हैं उनका भी वर्णन यहाँ पाया जाता है। राम की कथा का प्रचार तथा प्रसार प्राचीन काल में भारत के बाहर दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा तिब्बत, चीन और लंका में भी पाया जाता है। इस विषय के सम्बल में पुस्तकों का अभाव है। परन्तु करपात्रीजी ने अपनी अलौकिक विद्वता से तिब्बत, खोतान, हिन्देशिया, मलाया, जावा, हिन्दचीन, श्याम, बर्मा आदि देशों में प्रचलित रामकथा का बड़ा ही प्रामाणिक तथा विशद वर्णन किया है। इससे स्वामीजी के अगाध पाण्डित्य का पता चलता है।

दूसरी बात जो भारतीय विद्वानों को स्वामीजी के गम्भीर अध्ययन की सूचना देती है वह है रामायण और महाभारत का काल-निर्णय। भारतीय इतिहास के इन महाकाव्य ग्रन्थों के समय-निर्धारण के सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों—जैसे मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ, बेवर, ब्यूलर आदि—ने जो विवेचन किया है, उसे पूर्वपक्ष मान कर स्वामीजी ने उनके मतों का बड़ी ही गम्भीरता के साथ खण्डन किया है। इतना ही नहीं प्रिंसेप, एलेन, मार्शल स्मिथ तथा कनिंघम आदि विदेशी विद्वानों ने भारतीय इतिहास तथा अशोक के शिलालेखों के सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किया है स्वामीजी ने उसकी भी खरी आलोचना की है। पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के मत से रामायण तथा महाभारत की रचना बुद्ध के पश्चात् और ईसा के पहिले दूसरी या तीसरी शती में हुई थी। परन्तु स्वामीजी ने इसकी रचना ईसा से हजारों वर्ष पूर्व में सिद्ध करने का प्रयास किया। यह दूसरी बात है कि करपात्रीजी के तर्कों तथा उनकी स्थापनाओं से भले ही कोई देशी या विदेशी विद्वान् सहमत न हो, परन्तु जिस विद्वत्ता के साथ स्वामीजी ने इन तर्कों को प्रस्तुत किया है उसकी प्रशंसा किये बिना कोई नहीं रह सकता। कहाँ वेदान्त का ज्ञान और कहाँ भारतीय पुरातत्व तथा अभिलेख शास्त्र का अध्ययन। परन्तु स्वामीजी के व्यक्तित्व में इन दोनों ही प्राचीन तथा नवीन—विद्याओं का मनोहर समन्वय पाया जाता था।

(३) भक्तिसुधा[1]

स्वामीजी के भागवत-विषयक ग्रन्थों में यह ग्रन्थ निःसन्देह मुकुटमणि है। इस का प्रथम संस्करण तीन खण्डों में विभिन्न समयों में प्रकाशित हुआ था। नवीन द्वितीय संस्करण उसी का एक ही खण्ड में परिष्कृत एवं परिवृंहित स्वरूप प्रस्तुत करता है। लगभग एक सहस्र पृष्ठों में सम्वलित यह विपुलकाय ग्रन्थ परिमाणतः ही विपुल एवं अभिराम नहीं है, प्रत्युत गुणतः भी कमनीय एवं रमणीय है। स्वामीजी का यह मौलिक ग्रन्थ निःसन्देह उनकी तपःपूत लेखनी का अद्भुत चमत्कार है। इसके दो तिहाई भाग में (लगभग सात सौ पृष्ठों में) व्रजनन्दन श्री वृन्दावन लीला के ही नानारूपों का सांगोपांग विवेचन रसिकों के लिए चिन्तन एवं मनन की विपुल नूतन सामग्री प्रस्तुत करता

---

१. राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता द्वारा १९८० ई० में प्रकाशित।

है। बेणुगीत, चीरहरण, रासलीला एवं रासपंचाध्यायी का गम्भीर विवेचन रोचक शैली में निबद्ध होकर अपने पूर्ण वैभव के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। श्रीमद्भागवत के प्रचुर श्लोकों की गम्भीर एवं नवीन व्याख्या स्वामीजी की अलौकिक प्रतिभा का प्रसाद उपस्थित करती है। केवल यह एक ही ग्रन्थ करपात्रीजी की अलौकिक कल्पना, विशद व्याख्यान-शैली एवं नवीन आध्यात्मिक तथ्यों की विवेचना का द्योतक ग्रन्थरत्न माना जा सकता है।

(४) भगवत्-तत्व[1]

यह भी करपात्रीजी के द्वारा लिखित, विशिष्ट महत्वपूर्ण निबन्धों का संग्रह है।

(५) मार्क्सवाद और रामराज्य[2]

इसमें पाश्चात्य राजनीति और भारतीय राजनीति का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कर कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों की अनुपयोगिता सिद्ध की गयी है।

स्वामी जी के इतर हिन्दी ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—(१) वर्णाश्रम धर्म और संकीर्तन मीमांसा, (२) वेद का स्वरूप और प्रामाण्य, (३) अहमर्थ और परमार्थता, (४) संघर्ष और शान्ति, (५) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू धर्म (६) विदेश यात्रा का शास्त्रीय पक्ष, (७) पूंजीवाद, समाजवाद एवं रामराज्य।

करपात्री जी का व्यक्तित्व

स्वामी करपात्रीजी महाराज का व्यक्तित्व अलौकिक था जिसमें दृढ़ कर्मठता का, दीर्घ तपस्या के बल से उपार्जित विशुद्ध ज्ञान का तथा सात्त्विक हृदय में उद्वेलित परमानन्द से आप्लुत भक्ति का मधुमय सामंजस्य सद्यः प्रस्फुटित होता था। जिस किसी विषय के विश्लेषण में उनकी शेमुषी संलग्न होती थी, वह विषय गम्भीरतम, कठिन से कठिन होने पर भी श्रोताओं तथा पाठकों के हृदय में अत्यन्त सरलता से उपस्थित हो जाता था। उनकी वाणी तथा लेखनी दोनों ही धार्मिक जनता को आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता रखती थी। उनकी मधुर वाणी का चमत्कार उनके अद्भुत भाषणों में दृष्टिगोचर होता था तो उन की प्रौढ़ लेखनी का प्रभाव उनके प्रमेयबहुल ग्रन्थों में भूरिशः अनुभवगम्य बनता था। इस तथ्य को दृष्टान्तों के सहारे बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

स्वामीजी के भाषणों एवं ग्रन्थों - दोनों की एक मधुर दिशा है। इन्हें सुनकर तथा पढ़कर व्यक्ति के हृदय में तत्तद् विषयों के प्रति किसी प्रकार के संशय का लेश भी विद्यमान नहीं रहता। शास्त्रीय तथ्यों के विश्लेषण के समय उनकी वाणी जितनी तर्कनिष्ठ एवं युक्तिप्रवण होती थी, भक्ति रस के विवरण में वह उतनी ही मधुर, सरल-सुबोध एवं आनन्द-प्रसविनी बनती थी। भागवत की 'रासपंचाध्यायी' के रहस्यों का उद्घाटन उनकी भक्तिमयी वाणी इतनी सुन्दरता से करती थी कि उसमें नये-नये भावों

१. मूलचन्द चोपड़ा द्वारा बनारस से १९९७ वि० में प्रकाशित।
२. गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित।

की व्यंजना से, नवीन अर्थों की अभिव्यक्ति से एवं भगवल्लीला के अविराम आयामों की स्फूर्ति से श्रोताओं का हृदय आनन्द से आप्लावित हो उठता था। राधा-माधव की निकुंज लीला में प्रवेश कर वे अपनी विलक्षण अनुभूति का वर्णन सुना कर विज्ञ श्रोताओं को रसविभोर बना डालते थे। उनके व्यक्तित्व में मस्तिष्क और हृदय दोनों की उदात्त वृत्तियों को जगाने की, उद्बुद्ध करने की तथा संचारित करने की विलक्षण प्रतिभा थी।

करपात्री जी के जीवन में कर्म, ज्ञान तथा भक्ति की विमल त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। रामराज्य परिषद् की स्थापना, राजनीतिक चुनाओं में भाग लेना, अपने विषय के प्रतिपादन के लिए सभा मंचों से भाषण देना, धर्मसंघ की स्थापना तथा संस्कृत विद्या के प्रचार के लिए संस्कृत विद्यालय की स्थापना—ये उनके कर्मठ जीवन के उज्ज्वल प्रतीक हैं। अध्यात्मविषयक अनेक ग्रन्थों की संस्कृत तथा हिन्दी में रचनाएं इनके जीवन के ज्ञानपक्ष को उद्योतित करती हैं। अपने जीवन के प्रारम्भिक भाषणों में ज्ञानपरक विषयों को ये संस्कृतमयी, लच्छेदार तथा कठिन भाषा का प्रयोग इतना अधिक करते थे कि श्रोताओं के समूह में शायद ही दो-चार व्यक्ति इनके आशय को समझने में समर्थ हो सकते थे। परन्तु धीरे-धीरे इन्होंने अपने भाषण के स्तर को सरल बनाया था जिससे सभी लोग आसानी से समझ सकें।

भक्तिरस के विवेचन में भी करपात्रीजी बड़े ही अनुरागी व्याख्याता थे। श्रीमद्-भागवत की व्याख्या की ओर इनका नैसर्गिक आकर्षण या। राधा-माधव की लीलाओं के रहस्य का उद्घाटन ये इतनी सुन्दरता से करते थे कि कथा सुनने वाले लोग मुग्ध हो जाते थे।

भक्तिरस का उदय तथा अभ्युदय, विचार एवं विश्लेषण—सब कुछ श्रीमद्भागवत के ही अनुशीलन का व्यापक फल और इस महनीय कार्य के सम्पादन का श्रेय मिलना चाहिए काशी के अद्वैत वेदान्त मनीषी संन्यासियों को ही। इसी काशी नगरी के मह-नीय अद्वैती संन्यासी श्रीधर स्वामी ने अपनी 'भावार्थ दीपिका' नामक भागवत की व्याख्या के द्वारा भागवत के गम्भीर अर्थ को सर्वसाधारण के लिए सरल तथा सुबोध बनाया। यह घटना १४ वीं शताब्दी की है। इसके तीन शताब्दी बाद में विद्यमान गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन मधुसूदन सरस्वती शुष्क ज्ञानमार्ग के अनुयायी, अद्वैतवादी संन्यासी नहीं थे प्रत्युत भक्ति रस के व्याख्याता एवं भक्तिस्निग्ध हृदय से सम्पन्न एक महामान्य साधक तथा भक्त भी थे। अद्वैतसिद्धि जैसे अद्वैत ज्ञान से मंडित ग्रन्थ-रत्न के प्रणेता होने के साथ ही साथ ये 'भक्तिरसायन' जैसे भक्तिरस की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ के रचयिता भी थे। चौसट्ठी घाट पर विद्यमान अपने मठ में रहने वाले मधुसूदन सरस्वती काशी की ही प्रतिभाशाली विभूति थे। १८ वीं शती में विराजमान स्वामी नारायणतीर्थ ने जहाँ वेदान्त के चूड़ान्त ग्रन्थों का प्रणयन किया, वहीं वे 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' की भक्तिचन्द्रिका नामक व्याख्या लिखकर भक्ति के तत्त्व, प्रकार

तथा साधना को वेदमन्त्रों के द्वारा प्रतिष्ठित करने वाले व्याख्याकार थे। ये भी वाराणसी के ही संन्यासी सम्प्रदाय के अलंकार थे। स्वामी करपात्री जी भी काशी की इसी भक्तिमार्गीय, भागवती अद्वैती संन्यासियों की परम्परा के मुकुटमणि के रूप में विराजमान थे। बड़े दुःख का विषय है कि ऐसे दिव्य मनीषी ७ फरवरी १९८२ को ब्रह्मलीन हो गये और उनके तिरोधान से सनातनधर्म की अपूरणीय क्षति हुई है।

स्वामीजी का व्यक्तित्व

श्री करपात्रीजी का व्यक्तित्व बड़ा ही विशाल था। वे अद्वैत वेदान्त के प्रतिभा-सम्पन्न उच्चकोटि के मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनका शास्त्रीय वैदुष्य गुरुमत से अधिगत विद्या का प्रसाद नहीं था, प्रत्युत वह उनकी लोकातीत प्रतिभा की अन्तःस्फूर्ति का दिव्य प्रतीक था। अद्वैत के सहायक तथा पोषक मीमांसा, न्याय तथा सांख्ययोग शास्त्रों का भी ज्ञान उनका उतना ही पूर्ण तथा प्रभावशाली था। शास्त्रार्थ में उनकी वावदूकता तथा तर्कानुगामिता उतनी ही आवर्जक थी। सनातन धर्म के सिद्धान्तों के मण्डन करने में तथा उसके प्रतिस्पर्धियों के तर्काभास से परिपुष्ट मतों को ध्वस्त करने में उनकी तर्क-चातुरी का चमत्कार प्रौढ़ विद्वानों को भी आश्चर्यचकित करने वाला था। उनके आर-म्भिक कथा-प्रवचनों में वेदान्त के शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का बहुल प्रयोग उनके श्रोताओं के लिए एक विषम समस्या थी। परन्तु स्वामीजी ने धीरे-धीरे अपने भाषणों को जनता के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से उनके स्तर को कुछ कोमल बनाया। कठिन विषय के समझाने की उनकी शैली बड़ी ही रोचक तथा आकर्षक थी। उपनिषद् तथा शास्त्रों के प्रमाणभूत वचन उनके मुख से अनायास ही स्थान-स्थान पर आते रहते थे। फलतः स्वामीजी के समान अन्तराल में पहुँच कर शास्त्र के गूढ़ मर्मों को सीधी-सादी भाषा में जनता को समझाने वाला कोई दूसरा वक्ता नहीं था। वह सामान्य वक्ता न होकर शास्त्रार्थपटु अलौकिक वाग्मी थे जिसके विरल अस्तित्व के विषय में शास्त्र की उक्ति है—'वाग्मी भवति वा न वा'।

स्वामी करपात्रीजी भारतीय राजनीति के एक कर्मठ उपासक एवं दिव्य आदर्श के प्रतिष्ठाता थे। वे शास्त्रानुमोदित शासन को राजनीति का आधार मानते थे और इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने 'रामराज्य परिषद्' की स्थापना की थी। पाश्चात्य भौतिकवादी राजनीति का कोई भी दृढ़ दार्शनिक आधार नहीं है। प्रथम बार कार्ल मार्क्स ने 'कैपिटल' नामक मौलिक राजनीतिक ग्रन्थ में साम्यवाद और सामाजिक भौतिकवाद की व्याख्या दार्शनिक आधार पर की। स्वामी करपात्रीजी मार्क्सवाद तथा तत् सम्बद्ध राजनीतिक समस्याओं का मूल्यांकन अपने सुचिन्तित ग्रन्थ 'मार्क्सवाद और रामराज्य' में किया है। भौतिक विषयोपयोग, पूँजीवाद एवं श्रमिकवाद के दलदल से राजनीति को समुद्धृत कर स्वामीजी ने रामराज्य के मर्यादावाद एवं अध्यात्मवाद पर केन्द्रित किया। उन्होंने दिखलाया कि पूँजी तथा श्रम के परस्पर पोषक होने से स्वार्था-न्धता एवं वर्गविद्वेष, तथा वैयक्तिक, सामाजिक राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रिय संघर्षों को

प्रश्रम मिलेगा जो मानव समाज तथा विश्व के विनाश का कारण बनेगा। भारतीय राजनीति इस सिद्धान्त के कोसों दूर है। रामराज्यवाद ही आध्यात्मिकता पर आधारित, धर्मनियन्त्रित नीति से प्राणिमात्र को 'अमृतस्य पुत्राः' परमेश्वरी सन्तान मानकर उनके प्रति सहज भ्रातृभाव का समर्थन करता है। इस प्रकार प्रायः बारह सौ पृष्ठों के इस महनीय ग्रन्थरत्न में राजनीतिक क्षेत्र में विश्व को सुखशान्ति देने वाला रामराज्य ही विश्व का एकमात्र कल्याण-साधन हो सकता है—इस तथ्य का प्रतिपादन स्वामीजी ने बड़े तर्क तथा दृढ़ युक्तियों के सहारे सिद्ध किया। भारतीय राजनीति का ठोस दार्शनिक आधार प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ श्री करपात्रीजी के राजनीतिक चिन्तन तथा अनुशीलन का अनुपम प्रतीक है।

वर्तमान युग में भौतिकवाद के झंझावात से डाँवाडोल होने वाले वैदिक धर्म के संरक्षण, परिबृंहण तथा प्रस्थापन के निमित्त श्री स्वामीजी ने जो अश्रान्त अदम्य प्रयासों को संचारित किया उनका सुफल हमारे सामने विद्यमान है। उन्होंने भौतिकवाद की प्रबल आँधी से सनातन धर्म को मुक्त कर देश में धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण की सर्जना की। श्रौतस्मार्त पद्धतियों से परिपूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान की परम्परा का श्रीगणेश किया और शास्त्र एवं शास्त्रीयता की मर्यादा को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया। 'सर्ववेदशाखा सम्मेलनों' के माध्यम से उन्होंने देश में वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की। वेदों की अपौरुषेयता, उनका प्रामाण्य एवं उनकी सनातन उपयोगिता को सिद्ध कर स्वामीजी ने वेदों के प्रति लोगों में श्रद्धा उत्पन्न की, शास्त्रीय पद्धति को जीवन-यापन का मार्ग बनाया तथा सनातन धर्म की ज्योति को सर्वदा के लिए आलोकित कर दिया। सचमुच उनका व्यक्तित्व बड़ा विशाल था। वे लोक-कल्याण में निरन्तर संलग्न महामनीषी थे। वे सचमुच ही धर्मसम्राट् थे—अलौकिक महापुरुष थे, जिनके लोकातीत कार्यों का मूल्यांकन भविष्य की पीढियाँ बड़े आदर और सम्मान से आगे करती रहेंगी।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

काशी में भागवत व्यासों की परम्परा

काशी में श्रीमद्भागवत के प्रवचन करने वाले विद्वान् व्यासों की परम्परा रही है। इस परम्परा के अन्तर्गत गुजरात, महाराष्ट्र तथा उत्तरप्रदेश से सम्बद्ध ब्राह्मण परिवारों का अन्तर्भाव होता है। वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की क्रीडास्थली होने के कारण भागवत के कथाकार व्यासों का प्राचुर्य काशी में होना नितान्त स्वाभाविक है। महाराष्ट्रीय वैष्णवसन्त भी काशी में आकर अनेक वर्षों तक यहाँ निवास करते थे तथा मराठी में भागवत-विषयक ग्रन्थों का प्रणयन करते थे। प्रसिद्ध सन्त एकनाथ ने काशी में ही अपने प्रख्यात आध्यात्मिक ग्रन्थ **एकनाथी भागवत** का प्रणयन किया था (समाधिकाल १५७३ ई०)। उत्तरप्रदेश के महनीय वैष्णव सन्त

तथा पण्डित काशी में निवास करते थे तथा भागवत की मनोरम कथा का प्रचार अपने व्याख्यानों एवं भागवत प्रवचनों द्वारा किया करते थे । यह परम्परा आज भी जागरूक है तथा प्रगति पर है ।

पण्डित भागवती जी— ऐसे ही काशी मण्डल में जनमे एक भागवत-मर्मज्ञ व्यास का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है । इनका नाम तो था **श्री भूपनारायण मिश्र**, परन्तु वे अपनी 'भागवतीजी' की अन्वर्थक आख्या से ही विशेष प्रसिद्ध थे । इनका जन्म हुआ था वाराणसी मण्डल के 'महाइच' परगने में 'महेशी' नामक ग्राम में पण्डित परमेश्वरदत्त मिश्र के आत्मज-रूप में विक्रम सम्वत् १६१६ (१८५९ ई०) में ।

इनका घर का नाम भूपनारायण मिश्र था । पाँच भाइयों में ये तृतीय थे । कहा जाता है कि विद्याध्ययन के लिए वाराणसी आकर किसी कार्यवश शीघ्र ही घर लौट कर जाते समय मार्ग में ग्राम के एक ब्राह्मण ने उपहास में कहा कि 'ये देखो भूपन बनारस से भागवत पढ़ के आ गये ।' इस बात की प्रतिक्रिया के रूप में पण्डित जी ने पुनः वाराणसी आकर उस समय के विभिन्न विषयों के प्रख्यात विद्वानों से व्याकरण, साहित्य, मीमांसा, वेदान्त, धर्मशास्त्र, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत का गम्भीर प्रौढ़ अध्ययन किया और भागवत के पूर्ण विद्वान् के रूप में ही पुनः घर लौटे । उन्होंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन पं० **विश्वेश्वरदत्त ब्रह्मचारी भागवतीजी** से किया और उनके ही स्थान नीलकण्ठ मुहल्ला में राममन्दिर पर भागवत का अध्यापन नित्य पूर्वाह्न और अपराह्न दोनों समय निरन्तर यावज्जीवन करते रहे । यदाकदा वाल्मीकि रामायण और महाभारत का भी पाठ चलता रहा । श्रीधरी टीका अधिकतर इनको कण्ठस्थ थी । श्रीधरी के अनुसार ही ये व्याख्या करते थे ।

इनकी अध्यापन शैली व्याकरण, साहित्य और दर्शन के प्रौढ़ विद्वानों को भी श्रद्धावनत और मुग्ध करती थी । अनेक विद्यालय का मूर्धन्य विद्वद्वर्ग एवं साधुवर्ग इनसे निःसङ्कोच अध्ययन करता था । जब वे 'लोकेव्यवायामिषमद्य सेवा' इत्यादि श्लोकों की व्याख्या करते थे तब लगता था कि ये कोई उद्भट मीमांसक हैं । भागवत की 'वेद स्तुति' ऐसे स्थलों की व्याख्या के अवसर पर उनका दार्शनिक ज्ञान दर्शन के अच्छे विद्वानों को भी आश्चर्य-चकित कर देता था । मारवाड़ी संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री मदनमोहन शास्त्री और सेठ गौरीशंकर गोयनका अपने-अपने महाविद्यालयों में उन्हें भागवत के अध्यापन के लिए ले जाना चाहते थे किन्तु इन्होंने वृत्तिकाध्यापन को अस्वीकार कर दिया । अन्तिम समय में अनन्तश्री करपात्री जी के धर्मसङ्घ महाविद्यालय, वाराणसी में अध्यापन करते रहे । वाराणसी के प्रख्यात प्रतिष्ठित व्यक्ति कामेश्वरप्रसाद अग्रवाल के नीचीबाग के मन्दिर में प्रतिदिन वर्षों तक उनका कथा प्रवचन चलता रहा । उनके सहस्रों शिष्य भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बिखरे हुए हैं जिनमें कई धर्माचार्य संन्यासी महात्मा भी हैं । उन्हीं में एक स्वामी अखण्डानन्द

सरस्वती जी भी हैं। उनके छोटे पुत्र राधाकान्त मिश्र महेशी में और दो पौत्र श्रीचन्द्रकान्त मिश्र और शशिकान्त मिश्र वाराणसी में रहते हैं। इनका निधन वाराणसी में राममन्दिर में ही संवत् २०१४ (१९५७ ई०), भाद्रपद शुक्ल तृतीय को ६८ वर्ष की आयु में हुआ। पण्डितवर्ग एवं सम्मानित जनवर्ग में पण्डित जी की उच्चकोटि की प्रतिष्ठा थी। उन्होंने भागवत के प्रचार-प्रसार का अनुपम कार्य किया और भागवत के कई उच्च विद्वान् देश को दिये।

